

## अथ मुकुन्दमाला

ॐ वन्दे मुकुन्दमरविन्ददलायताक्षं  
कुन्देन्दुशङ्खदशनं शिशुगोपवेषम्।  
इन्द्रादिदेवगणवन्दितपादपीठं  
वृन्दावनालयमहं वसुदेवसूनुम् ॥१॥

अर्थ:—जिसकी आँखें कमल के पत्ते की तरह लम्बी हैं, कुन्द फूल, चन्द्रमा और शंख की तरह जिसके दाँत सफेद हैं, जो ग्वालबाल के वेश में हैं, जिसके पाद-पीठ (पैरों की चौकी) को इन्द्रादि देवतागण वन्दना करते हैं और जो वसुदेव का पुत्र है उसी वृन्दावनवासी नारायण की मैं वन्दना करता हूँ।

सारांश:—मैं भगवान् की महानता और उसकी लीलाओं का अनुभव करता रहूँ।

श्रीवल्लभेति वरदेति दयापरेति  
भक्तप्रियेति भवलुण्ठनकोविदेति।  
नाथेति नागशयनेति जगन्निवासे-  
त्यालापिनं प्रतिदिनं कुरुमां मुकुन्द ॥२॥

अर्थ:—“हे मुकुन्द! हे लक्ष्मी के प्यारे! हे वर को देने वाले! हे दया में लगे हुए! हे भक्तों के प्यारे! हे संसार के बीच लुढ़कने में भी पण्डित (चतुर)! हे शेषनाग पर सोने वाले! और हे जगत में निवास करने वाले!” ये ही आलाप करता हुआ मैं सदैव बना रहूँ।



सारांशः—मैं सदा भगवान् के नामों का जप करते हुए उनके स्वरूप का ध्यान करने वाला रहूँ।

जयतु जयतु देवो देवकीनन्दनोऽयं  
जयतु जयतु कृष्णो वृष्णिवंशप्रदीपः।  
जयतु जयतु मेघश्यामलः कोमलाङ्गो  
जयतु जयतु पृथ्वीभारनाशो मुकुन्दः ॥३॥

अर्थः—हे मुकुन्द! देवकी को आनन्द देने वाले! आपको जय जयकार हो, कृष्ण जो यादव-कुल का प्रदीप (चिराग) है उसी आपको जय जयकार हो, जो बादल की तरह श्याम रंग वाला है और जिसके अंग कोमल हैं उसी आपको जय जयकार हो और जो पृथ्वी के भार (पापों) को नाश करने वाला है उसी नारायण को जय जयकार हो।

सारांशः—विभिन्न नामों वाले आप लीलामय नारायण के स्वरूप में मैं लीन हो जाऊँ।

मुकुन्द मूर्ध्ना प्रणिपत्य याचे  
भवन्तमेकान्तमियन्तमर्थम्।  
अविस्मृतिस्त्वच्चरणारविन्दे  
भवे भवे मेऽस्तु भवत्प्रसादात् ॥४॥

अर्थः—हे नारायण! मैं आपको सिर से (नत-मस्तक होकर) प्रणाम करता हूँ और आप से केवल यही एक वर माँगता हूँ कि मैं जन्म-जन्मान्तर में आपके प्रसाद से आपके चरण-कमलों का स्मरण भूल न जाऊँ।

सारांशः—मैं नित्य और निरन्तर भगवान् का स्मरण करता रहूँ।



श्रीमुकुन्दपदाम्भोजमधुनः परभाद्भुतम्।

यत्पायिनो न मुह्यन्ति मुह्यन्ति यदपायिनः ॥५॥

अर्थः—श्रीमुकुन्द के चरण-कमलों का मद्य (शराब) बहुत ही अलौकिक है जिसको पीकर (भक्तजन) मोह में नहीं पड़ते हैं और जिसको (अभक्तजन या संसारी लोग) न पीकर ही मोह में पड़ जाते हैं।

सारांशः—भगवान् के यथार्थ स्वरूप का निरन्तर ध्यान करने से ही मनुष्य माया-मोह से निवृत्ति प्राप्त कर सकता है।

नाहं वन्दे तव चरणयोर्द्वन्द्वमद्वन्द्वहेतोः

कुम्भीपाकं गुरुमपि हरे नारकं नापनेतुम्।

रम्यारामामृदुतनुलतानन्दनेनापि रन्तुं

भावे भावे हृदयभवने भावयेयं भवन्तम् ॥६॥

अर्थः—हे नारायण! मैं अद्वैत स्वरूप सिद्ध होने के लिए आपके चरण-कमलों की जोड़ी को प्रणाम नहीं करता, न कुम्भीपाक के भयंकर नरक को हटाने के लिए ही और इन्द्र के बाग में, जिसमें कोमल और सूक्ष्म लताएं हैं उसमें सुन्दर अप्सराओं की क्रीड़ा के लिए भी नहीं, परन्तु मैं हर अवस्था में हृदय रूपी भवन में आपकी ही भावना करूँ। इसीलिए मैं आपकी वन्दना करता हूँ।

सारांशः—मुझे अद्वैतवादी होने का अभिमान न हो। इहलोक और परलोक के भोगों में वैराग्य हो और स्वस्वरूप का निरन्तर ध्यान रहे।

नास्था धर्मे न वसुनिचये नैव कामोपभोगे

यद्यद्भव्यं भवतु भगवन्पूर्वकर्मानुरूपम्।



एतत्प्रार्थ्यं मम बहुमतं जन्मजन्मान्तरेऽपि  
त्वत्पादाम्भोरुहयुगगता निश्चला भक्तिरस्तु ॥७॥

अर्थ:—हे भगवान्! मुझे लौकिक धर्म में भी विश्वास नहीं है, न धन के जोड़ने में, और न कामनाओं के भोगने में विश्वास है। जो मेरे प्रारब्ध के अनुसार भोग प्राप्त हों वे होते रहें। मैं आपसे यही प्रार्थना करता हूँ कि मुझे आपके चरण-कमलों की जोड़ी में जन्मजन्मान्तर में निश्चल भक्ति हो, क्योंकि मैंने आपकी भक्ति को ही बहुत माना है।

सारांश:—निज कर्मानुसार (प्रारब्धवश) लोक में भोग भोगता हुआ भी मैं भगवान् की अचल भक्ति का भाजन बना रहूँ।

दिवि वा भुवि वा ममास्तु वासो  
नरके वा नरकान्तक प्रकामम्।  
अवधीरितशारदारविन्दौ  
चरणौ ते मरणेऽपि चिन्तयामि ॥८॥

अर्थ:—हे नरक के शत्रु भगवान्! मुझे निश्चय करके स्वर्ग लोक में, मर्त्यलोक में या नरक लोक में निवास करना हो (परन्तु) आपके चरण-कमल जिनसे शरद्-काल के कमल को भी अनादर होता है, उन्हीं की मैं मरण-काल में भी चिन्ता करता रहूँ।

सारांश:—प्रारब्धानुसार संसार की किसी भी परिस्थिति में रहते हुए मुझे अन्त तक भगवान् के स्वरूप का चिन्तन बना रहे।

सरसिजनयने सशङ्खचक्रे  
मुरभिदि मा विरमेह चित्त रन्तुम्।



सुखतरमपरं न जातु जाने  
हरिचरणस्मरणामृतेन तुल्यम् ॥९॥

अर्थ:—हे मन! जिस नारायण के नेत्र कमल के पत्ते जैसे हैं, जो शंख और चक्र धारण किये हुए हैं और जो मुरदैत्य का नाशक नारायण हैं, उसमें राग करने से मत रुको। निश्चय ही मैं हरि के चरणों के स्मरण रूपी अमृत के समान दूसरा कोई सुख नहीं जानता हूँ।

सारांश:—मन को भगवत्-चिन्तन में लगाने से ही स्वरूप लाभ होना सम्भव है।

मा भैर्मन्दमनो विचिन्त्य बहुधा यामीश्चिरं यातना  
नामी नः प्रभवन्ति पापरिपवः स्वामी ननु श्रीधरः।  
आलस्यं व्यपनीय भक्तिसुलभं ध्यायस्व नारायणं  
लोकस्य व्यसनापनोदकरो दासस्य किं न क्षमः ॥१०॥

अर्थ:—हे मूर्ख मन! चिर-काल-वर्ती यमराज की पीड़ाओं की चिन्ता से मत डरो, यह पाप की शत्रु पीड़ाएं हमें दबाने में समर्थ नहीं हैं। निश्चय करके हमारे स्वामी वही लक्ष्मीपति नारायण हैं। (अतः) आलस्य को दूर भगाकर भक्ति के द्वारा जो नारायण सुलभ है उसी का ध्यान कर। जो लोगों के दुःखों को दूर करने में समर्थ हैं, वह क्या मुझ दास के दुःखों को दूर करने में समर्थ नहीं हो सकते? अर्थात् वह मुझ दास के दुःखों को अवश्य दूर कर सकते हैं।

सारांश:—आलस्य को त्याग कर और पुरुषार्थ से बल पाकर ही मन को भगवत्-चिन्तन में लगाने से मनुष्य ईश्वर-अनुग्रह का भाजन बन सकता है।



भवजलधिमगाधं दुस्तरं निस्तरेयं  
 कथमहमिति चेतो मास्म गाः कातरत्वम्।  
 सरसिजदृशि देवे तावकी भक्तिरेका  
 नरकभिदि निषण्णा तारयिष्यत्यवश्यम् ॥११॥

अर्थ:—हे मन! “संसार रूपी सागर जो कठिन और गहरा है, उसमें मैं किस तरह पार हो जाऊँ”, यह विचार कर कायर मत बनो। जिस देव कृष्ण के नेत्र कमलपत्र के समान हैं, जो नरक को भी नाश करने में प्रवीण हैं, केवल उसी की भक्ति ही तुम्हें इस (भवसागर) से अवश्य पार ले जायेगी।

सारांश:—मन को भगवत्-चिन्तन में लगाने से ही मनुष्य इस भवसागर से पार हो सकता है।

तृष्णातोये मदनपवनोद्धूतमोहोर्मिमाले  
 दारावर्ते तनयसहजग्राहसङ्घाकुले च।  
 संसाराख्ये महति जलधौ मज्जतां नस्त्रिधामन्  
 पादाम्भोजे वरद भवतो भक्तिनावे प्रसीद ॥१२॥

अर्थ:—हे तीन लोकों अर्थात् तीन अवस्थाओं के स्वामी! हम संसार रूपी महान् समुद्र में, जिसमें तृष्णा रूपी जल है, कामदेव रूपी पवन से उठी हुई मोह रूपी लहरों की मालाएं, (विषय-भोग-प्रधान) स्त्री रूपी भंवर (आवलुन) और सन्तान सुन्दर मगरमच्छों का समूह जैसा है, (इन्हीं के मेल से इसमें) डूबे हुए हैं। वर को देने वाले हे नारायण! हमें अपनी चरण-कमलों की भक्ति रूपी किशती में ही आश्रय दो।

सारांश:—मनुष्य को जाग्रत आदि तीनों अवस्थाओं में पुरुषोत्तम



भगवान् का ध्यान दृढ़ होने पर ही द्वैत-भ्रम का नाश होकर जीवन-मुक्ति का लाभ प्राप्त हो सकता है।

पृथ्वी रेणुरणुः पयांसि कणिका फल्गुः स्फुलिङ्गोलघु-  
स्तेजो निःश्वसनं मरुत्तनुतरं रन्ध्रं सुसूक्ष्मं नभः।

क्षुद्रा रुद्रपितामहप्रभृतयः कीटाः समस्ताः सुराः  
दृष्टे यत्र स तावको विजयते भूमावधूतावधिः ॥१३॥

अर्थः—जिस आपका साक्षात्कार करने पर पृथ्वी एक धूल का कण दिखाई देती है, जल छोटी बूंद बनता है, तेज आग की छोटी चिंगारी, वायु एक सांस मात्र रहता है और आकाश एक सूक्ष्म छेद जैसा प्रतीत होता है, शिव और ब्रह्मा आदि सब देवता छोटे कीड़े जैसे दिखाई देते हैं, उसी आपके उत्तम से उत्तम असीम सुख की जय हो।

सारांशः—उस पुरुषोत्तम परब्रह्म का साक्षात्कार होने पर पंचभूतों की कोई सत्ता नहीं रहती है और द्वैत परम्परा में पड़े हुए देवतागण भी तुच्छ बन जाते हैं।

आम्नायाभ्यसितान्यरण्यरुदितं कृच्छ्रव्रतान्यन्वहं  
मेदच्छेदफलानि पूर्तविधयः सर्वे हुतं भस्मनि।  
तीर्थानामवगाहनानि च गजस्नानं, विना यत्पद-  
द्वन्द्वाम्भोरुहसंस्तुतिं विजयते देवः स नारायणः ॥१४॥

अर्थः—जिस नारायण के चरण-कमलों की जोड़ी की स्तुति के बिना शास्त्रों का अभ्यास करना जंगल में रोने के समान निष्फल हो जाता है, प्रतिदिन रखे हुए कृच्छ्र, चन्द्रायण आदि व्रत केवल त्वचा तथा चर्बी को ही पिघलाते हैं। परोपकार के पूर्त कर्म भी भस्म में आहुति डालने के तुल्य निष्फल हो जाते हैं, तीर्थों में स्नान करना



हाथी के स्नान के समान निष्फल हो जाता है, उस नारायण की भक्ति का आश्रय ही फलदायक है। अतः उसी नारायण की जय हो।

सारांशः—नारायण की अनन्य भक्ति के बिना शास्त्र विहित (विधान किये हुए) कर्म भी निष्फल ही होते हैं।

आनन्द गोविन्द मुकुन्द राम

नारायणानन्त निरामयेति।

वक्तुं समर्थोऽपि न वक्ति कश्चित्

अहो! जनानां व्यवसानि मोक्षे ॥१५॥

अर्थः—आश्चर्य है कि मनुष्य—‘हे आनन्द! हे गोविन्द! हे मुकुन्द! हे राम! हे नारायण! हे अनन्त! और हे रोग रहित!’ ये नाम कहने के लिए समर्थ होकर भी कभी नहीं कहते हैं, इसीलिए तो उन्हें मोक्ष (मुक्ति) मिलने में रुकावटें आ जाती हैं।

सारांशः—अमूल्य और देवदुर्लभ मानव-जन्म को प्राप्त करके भी मनुष्य अपने सहज स्वरूप को पहचानने का पुरुषार्थ नहीं करता। हाय! यह केसा माया-मोह है।

क्षीरसागरतरङ्गशीकरासारतारकितचारुमूर्तये।

भोगिभोगशयनीयशायिने माधवाय मधुविद्विषे नमः ॥१६॥

अर्थः—क्षीरसागर के लहरों से उठने वाली छींटों के बौछार से मानो तारों की सुन्दर मूर्ति वाले लक्ष्मीपति नारायण और शेषनाग रूपी भोग-शय्या पर शयन करने वाले मधु राक्षस के शत्रु (मारने वाले) नारायण को मैं नमस्कार करता हूँ।

सारांशः—परब्रह्म के स्वरूप में निमग्न होने से उसकी अनन्तता का अनुभव होता है। इस प्रकार कर्म-फलों के भोग से निर्लेप होकर



मानव जीव-भाव के अहंकार को पर-प्रमातृभाव में लीन कर बैठता है।

वात्सल्यादभयप्रदानसमयादार्तार्तिनिर्वापणात्  
 औदार्यादघशोषणादगणितश्रेयःपदप्रापणात्।  
 सेव्यः श्रीपतिरेव सर्वजगतामेकान्ततः साक्षिणः  
 प्रह्लादश्च विभीषणश्च करिराट्  
 पाञ्चाल्यहल्याऽध्रुवः ॥१७॥

अर्थः—लक्ष्मीपति नारायण की जगत के सब मनुष्यों द्वारा अधिकतर (छः प्रकार से) उपासना करने योग्य है, इसके लिए अधिकतर साक्षी यह हैंः—(क) वात्सल्य (स्नेह) से प्रह्लाद का, (ख) अभय प्रदान के आचरण से विभीषण का, (ग) आर्त के दुःख को दूर करने से गजेन्द्र का, (घ) उद्धारता से द्रोपदी का, (ङ) अगणित पापों के नाश करने से अहल्या का और (च) मोक्ष पद के प्राप्त कराने से भक्त ध्रुव का उद्धार हुआ।

सारांशः—विशेष भक्तों के उदाहरण से यह स्वयं सिद्ध है कि भगवान् की अनन्य उपासना करने से ही आत्मोद्धार होता है।

नाथे श्रीपुरुषोत्तमे त्रिजगतामेकाधिपे चेतसा  
 सेव्ये स्वस्य पदस्य दातरि परे नारायणे तिष्ठति।  
 यं कञ्चित्पुरुषाधमं कतिपयग्रामेशमल्पार्थदं  
 सेवायै मृगयामहे नरमहो मूढा वराका वयम् ॥१८॥

अर्थः—सर्व जगत के स्वामी, सर्व-समृद्ध पुरुषोत्तम, तीनों लोकों के स्वामी, मन से सेवा करने पर अपने पद को देने वाले परमात्मा और नारायण के होते हुए यदि हम किसी संकुचित लाभ देने



वाले की इच्छा रखते हैं तो आश्चर्य है कि हम सब बेचारे मूर्ख ही हैं, जो जगतपति को छोड़कर इस अधम पुरुष की सेवा करते हैं।

सारांशः—ईश्वर की अनन्योपासना ही आत्मोन्नति का कारण हो सकती है।

हे लोकाः शृणुत प्रसूतिमरणव्याधेश्चिकित्सामिमां  
योगज्ञाः समुदाहरन्ति मुनयो यां याज्ञवल्क्यादयः।  
अन्तर्ज्योतिरमेयमेकममृतं कृष्णाख्यमापीयतां  
तत्पीतं परमौषधं वितनुते निर्वाणमात्यन्तिकम् ॥१९॥

अर्थः—अरे लोगों! जन्म-मरण रूप व्याधि की इस चिकित्सा (इलाज) को सुनो, जिसे याज्ञवल्क्य आदि योगी और मुनि कहते हैं। श्रीकृष्ण नाम रूपी अन्तर्ज्योति स्वरूप और परिणाम रहित अमृत को पी लो। उस परम औषधि को पीकर पारमार्थिक मोक्ष मिल जाता है।

सारांशः—अन्तर्ज्योति स्वरूप भगवान् का ध्यान और नाम जप रूप औषधि ही भवरोग को हटाकर आत्मोन्नति का साधन बन सकती है।

बद्धेनाञ्जलिना नतेन शिरसा गात्रैः सरोमोद्गमैः  
कण्ठेन स्वरगद्गदेन नयनोद्गीर्णेन वाष्पाम्बुना।  
नित्यं त्वच्चरणारविन्दयुगलध्यानामृतास्वादिना-  
मस्माकंसरसीरुहाक्षसततंसम्पद्यतां जीवितम् ॥२०॥

अर्थः—हे कमलपत्र जैसे नेत्र वाले प्रभु! दोनों हाथ जोड़कर झुके हुए सिर से, रोमांच से भरे अंगों से, गद्गद स्वर वाले कण्ठ से और नेत्रों से बहते हुए आँसुओं के जल से हम प्रतिदिन आपके चरणों की जोड़ी के ध्यानरूपी अमृत का स्वाद लेते हुए अपना सारा जीवन



बिताते रहें।

सारांशः—सम्पूर्ण शरणागति भाव से निर्लेप भगवान् के ध्यान में अवस्थित रहना ही यथार्थ में जीवन है।

तत्त्वंब्रुवाणानि परं परस्माद्  
अहो क्षरन्तीव सुधां पदानि।  
आवर्तय प्राञ्जलिरस्मि जिह्वे!  
नामानि नारायणगोचराणि ॥२१॥

अर्थः—अरी जीभ! मैं हाथ जोड़कर तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि तुम उन नामों का बार-बार जप करती रहो जो तत्त्व को कहने वाले बड़े से बड़े नारायण-सम्बन्धी नामों के पद, अमृत की तरह अति चकित विस्तार को प्राप्त होता है।

सारांशः—स्वरूप के नित्य स्मरण में रहना ही जप है।

इदं शरीरं परिणामपेशलं  
पतत्यवश्यं श्लथसन्धिजर्जरम्।  
किमौषधैः क्लिश्यसि मूढ दुर्मते  
निरामयं कृष्णरसायनं पिब ॥२२॥

अर्थः—यह शरीर परिणामस्वरूप मसलन वाला है, ढीले जोड़ों वाला और जर्जर होने के कारण अवश्य नष्ट होने वाला है। अतः हे दुर्बुद्धि वाले मूर्ख (जीव)! औषधियों (दवाइयों) के सेवन करने से क्यों कष्ट उठा रहे हो? माया की उपाधि रहित श्रीकृष्ण नाम की औषधि पी लो (जिससे मायोपाधि रहित ब्रह्म अर्थात् स्वस्वरूप में स्थित होकर अक्षय आनन्द का उपभोग करोगे)।

सारांशः—क्षणभंगुर और नाशवान इस शरीर का मोह छोड़कर



स्वरूपस्थिति का लाभ सम्भव है।

श्रीमान्नाम प्रोच्य नारायणाख्यं  
के न प्राप्ता वाञ्छितं पापिनोऽपि।  
हा नः पूर्वं वाक्प्रवृत्ता न तस्मि-  
स्तेन प्राप्तं गर्भवासादिदुःखम् ॥२३॥

अर्थ:—नारायण के शुभ नाम का (ध्यानपूर्वक) उच्चारण करने से किन पापियों ने अपनी-अपनी इच्छाओं के अनुसार फल नहीं पाया! शोक है कि हमारी वाणी उस (नारायण के नामोच्चारण) में पहले (पूर्व जन्मों में) प्रवृत्त न हुई थी। इसी से तो गर्भवास आदि (संसार के) दुःखों को हम प्राप्त हुए हैं।

सारांश:—ईश्वर-पराङ्मुख रहने से ही जीव मायाकार्य जगत के दुःखों से पीड़ित रहता है।

मा द्राक्षं क्षीणपुण्यान्क्षणमपि भवतो भक्तिहीनान्यदाब्जे  
मा श्रौषं श्राव्यबद्धं तव चरितमपास्यान्यदाख्यानजातम्।  
मास्प्राक्षं माधव त्वामपि भुवनपतिं चेतसाऽपहुवानं  
मा भूवं त्वत्सपर्याव्यतिकररहितो  
जन्मजन्मान्तरेऽपि ॥२४॥

अर्थ:—हे लक्ष्मीपति नारायण! आपके चरण-कमलों में भक्ति से रहित (अतः) क्षीण हुए पुण्य वाले जीवों को मैं न देखूँ, आपके चरित (गुणानुवाद) को छोड़कर दूसरे कथा-कहानी कान धर कर न सुनूँ। आप (चौदह) भुवनों के स्वामी को मन से निषेध करने वाले का स्पर्श न करूँ और इस जन्म अथवा दूसरे जन्मों में भी आपका ध्यान आदि पूजा से विमुख न रहूँ।



सारांशः—आत्मलाभ के लिए ईश्वरोन्मुख रहने से पहले विषयों से विमुख होना आवश्यक है।

मदन परिहर स्थितिं मदीये  
मनसि मुकुन्द पदारविन्दधाम्नि।  
हरनयनकृशानुना कृशोऽसि  
स्मरसि न चक्रपराक्रमं मुरारेः ॥२५॥

अर्थः—हे कामदेव! भगवान् नारायण के चरण-कमलों का स्थान जो मेरा मन बना हुआ है, उसमें तुम ठहरना छोड़ दो। तुम तो शिव के (तीसरे) नेत्र की अग्नि से दग्धप्राय बने हुए हो (और) नारायण के सुदर्शन चक्र के पराक्रम (बल) को स्मरण नहीं करते हो।

सारांशः—समग्र उन्नतियों का साधन एक मात्र ब्रह्मचर्य ही है।

दारा वाराकरवरसुता तेऽङ्गजोऽयं विरिञ्चिः  
स्तोता वेदास्तव सुरगणो भृत्यवर्गः प्रसादः।  
मुक्तिर्मध्ये जगदविकलं तावकी देवकीयं  
माता मित्रं बलिरिपुसुतस्तत्त्वतो न्यत्र जाने ॥२६॥

अर्थः—क्षीरसागर की उत्तम पुत्री आपकी स्त्री हैं, ब्रह्मा आपके पुत्र हैं, चार वेद (आर्ष) आपकी स्तुति करते हैं, देवता गण ही आपके नौकरों का समूह है, जगत के बीच में रहते हुए व्याकुल न होने का अनुग्रह ही मुक्ति है, देवकी आपकी माता हैं, बलि के शत्रु का पुत्र आपका मित्र है। इसके अतिरिक्त मैं कुछ नहीं जानता हूँ।

सारांशः—भगवान् नारायण ही वेदों और देवताओं का आदि कारण है। अतः उसकी सत्ता सर्वजगत में व्याप्त है सच्चे भक्तों को



यही निश्चय होना चाहिए।

जिह्वे कीर्तय केशवं मुररिपुं चेतो भज श्रीधरं  
पाणिद्वन्द्व समर्चयाच्युत कथाः श्रोत्रद्वय त्वं शृणु।  
कृष्णं लोकय लोचनद्वय हरेर्गच्छाङ्घ्रियुग्मालयं  
जिघ्र घ्राण मुकुन्दपादतुलसीं मूर्धन्नमाधोक्षजम् ॥२७॥

अर्थ:—अरी जीभ! केशव का कीर्तन करते रहो, हे मन! मुरारी का भजन करते रहो, हे दो हाथों! लक्ष्मीपति नारायण की पूजा करते रहो, हे दो कानों! तुम अच्युत नारायण की कथाओं को सुनते रहो, हे दो नेत्रों! भगवान् कृष्ण के ध्यान में ही मग्न रहो, हे दो पैरों! हरि के मन्दिर की यात्रा करते रहो, हे नासिका! तुम मुकुन्द के पादों पर अर्पित तुलसी को सूंघते रहो और हे सिर! तुम इन्द्रियों से अतीत नारायण को नमन करते रहो।

सारांश:—इन्द्रियों को विषयों से हटाकर नारायण में लीन करना ही श्रेयस्कर है।

यत्कृष्णाप्रणिपातधूलिधवलं तद्वैशिरःस्याच्छुभं  
ते नेत्रे तमसोज्झिते सुरुचिरे याभ्यां हरिर्दृश्यते।  
सा बुद्धिर्नियमैर्यमैश्च विमला या माधवध्यायिनी  
सा जिह्वाऽमृतवर्षिणी प्रतिपदं या स्तौति  
नारायणम् ॥२८॥

अर्थ:—वही सिर सार्थक है जो कृष्ण भगवान् को प्रणाम करने से धूलि धूसरित (अर्थात् धूलि से सफेद) हुआ हो। वे ही (अज्ञान रूप) अन्धकार को हटाये हुए सुन्दर नेत्र (अर्थात् दिव्य चक्षु) है जिनसे भगवान् हरि का दर्शन (साक्षात्कार) किया जाता हो। नियम



(जप, तप, दान आदि द्वारा इन्द्रिय निग्रह) और यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि द्वारा मनोनिग्रह) का सेवन करने से निर्मल बनी हुई बुद्धि (जिसे 'ऋतम्बरा' प्रज्ञा कहते हैं), वही है जो नारायण का ध्यान करती हो और वही प्रत्येक वार्ता में (कथि-पत्-कथि प्यठ) अमृत वर्षन करने वाली जिह्वा है जो (मन और वाणी को एक करके) नारायण की स्तुति में लगी हो।

सारांशः—इन्द्रियों द्वारा अगोचर भगवान् का साक्षात्कार करने के लिए उनके विषयों के मोह से सर्वथा निवृत्त होना आवश्यक है।

भक्तद्वेषभुजङ्गगारुडमणिस्त्रैलोक्यरक्षामणि-

गोपीलोचनचातकाम्बुदमणिः सौन्दर्यमुद्रामणिः।

श्रीकान्तामणिरुक्मिणीघनकुचद्वन्द्वैकभूषामणिः

श्रेयो ध्येयशिखामणिर्दिशतु नो गोपालचूडामणिः ॥२९॥

अर्थः—बाल कृष्ण गोपाल (अर्थात् वेदों में गाया हुआ भगवान् नारायण) रूप (जो) शिरोरत्न (अर्थात् सर्वाराध्य देव है, जो) भक्तों में द्वेष रूप सांप को नष्ट करने वाला गरुड़ रूपी रत्न (है, जो) त्रिलोकी की रक्षा करने वाला रत्न (है, जो) सुन्दरता रूप अंगूठी का रत्न (है, जो) प्यारी लक्ष्मी का रत्न (है, जो) रुक्मिणी के (ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति रूप) घने वक्षस्थल का केवल भूषण बना हुआ रत्न (है, और जो) ध्यान करने योग्य चर्मावस्था रूप रत्न (है, वह) हम (भक्तों को) कल्याण प्रदान करे।

सारांशः—देवादिदेव परब्रह्म के स्वरूप का अनुभव उसी के अनुग्रह से, माया के मोह को लांघकर ही, होना सम्भव है।

शत्रुच्छेदैकमन्त्रं सकलमुपनिषद्वाक्यसम्पूज्यमन्त्रं



संसारोत्तारमन्त्रं समुदिततमसां संघनिर्याणमन्त्रम्।  
 सर्वैश्वर्यैकमन्त्रं व्यसनभुजगसन्दष्टसन्त्राणमन्त्रं  
 जिह्वे श्रीकृष्णमन्त्रं जप जप सततं जन्मसाफल्य-  
 मन्त्रम् ॥३०॥

अर्थ:—हे जीभ! शत्रु को मारने का (अर्थात् द्वैत का निवारण करने वाला) एक ही मन्त्र, सारे उपनिषद वाक्यों द्वारा पूजा के योग्य मन्त्र, संसार से पार उतरने वाला मन्त्र, (अज्ञान रूप) अन्धकार जिनमें पैदा हुआ हो उनके समूह को हटाने वाला मन्त्र, सब ऐश्वर्यों को (देने वाला) एक ही मन्त्र, विषयादि दुःख रूपी साँपों के काटने से बचाने वाला मन्त्र, श्रीकृष्ण नाम का मन्त्र जो (जीव के) जन्म को सफल बनाने वाला अर्थात् अभेद दृष्टि देने वाला मन्त्र है उस (मन्त्र) का बार-बार जप करती रहो।

सारांश:—ईश्वर के गुणों का लगातार मनन करते रहने से ही जीव को संसार के दुःखों से रक्षा हो सकती है।

व्यामोहोद्दलनौषधं मुनिमनोवृत्तिप्रवृत्त्यौषधं  
 दैत्यानर्थकरौषधं त्रिभुवने सज्जीवनैकौषधम्।  
 भक्तार्तिप्रशमौषधं भवभयप्रध्वंसि दिव्यौषधं  
 श्रेयःप्राप्तिकरौषधं पिव मनः श्रीकृष्णानामौषधम् ॥३१॥

अर्थ:—हे मन! श्रीकृष्ण के नामोच्चारण रूप औषधि जो संसार रूप घने मोह को नष्ट करने वाली औषधि (है, जो) मननशील (योगियों) की मनोवृत्ति को एकाग्र करने की औषधि (है, जो भूः भुवः और स्वः, इन) तीनों भुवनों में केवल संजीवन रूप (अर्थात् अभेद भक्ति की) औषधि (है, जो) भक्तों के दुःखों को शमन करने



वाली औषधि (है, जो) संसार के (जन्म-मरण रूप) भय को नाश करने वाली अलौकिक औषधि (है और जो आत्मोन्नति रूप) कल्याण को प्राप्त कराने वाली औषधि (है, उसको) सदा के लिए पीता रह।

सारांश:—श्रीकृष्ण के नामोच्चारण द्वारा परब्रह्म के ध्यान में एकाग्रता से दृढ़ता प्राप्त करना ही मोह-मय और भेद-संकुल संसार-द्वन्द्व रूप रोग की औषधि है।

आश्चर्यमेतद्धि मनुष्यलोके

सुधांपरित्यज्य विषं पिबन्ति।

नामानि नारायणगोचराणि

त्यक्त्वान्यवाचः कुहकाः पठन्ति ॥३२॥

अर्थ:—यह आश्चर्य ही है (कि इस) मनुष्य लोक में (देव-दुर्लभ मानव-जन्म को प्राप्त करके लोग अद्वैत रूप) अमृत को छोड़कर (द्वैत रूप) विषय भोग रूपी विष को पीते रहते हैं (क्योंकि वे) नारायण का साक्षात्कार कराने वाले (उसके) नामों (के उच्चारण को) छोड़कर दूसरी बातों का (अनात्म वर्ग सम्बन्धी अर्थात् विषय-वासना रूप निरर्थक) बकवास करते रहते हैं।

सारांश:—देव-दुर्लभ मनुष्य जन्म को पाकर जीव को आत्म-लाभार्थ विषय-वासना से सर्वथा विरक्त होकर भगवान् के भजन ध्यान में मग्न रहना चाहिए।

लाटी नैत्रपुटी पयोधरघटी क्रीडाकुटी दोस्तटी

पाटीरट्टमवर्णनेन कविभिर्मूढैर्दिनं नीयते।

गोविन्देति जनार्दनेति जगतां नाथेति कृष्णेति च

व्याहारैः समयस्तदेकमनसां पुंसां परिक्रामति ॥३३॥



अर्थ:—भेद बुद्धि वाले मूर्ख कवि (संसार के मोह को बढ़ाने वाले और क्षणभंगुर) प्रेमिका-सौन्दर्य के विषय-वर्णन में दिन गुजारते हैं। (परन्तु) एकाग्र मन वाले (भक्त-भोगी) 'हे गोविन्द! हे जनार्दन! हे तीन लोकों के नाथ! और हे कृष्ण!' (इस प्रकार के) वचन बोलने में ही समय लगाते हैं।

सारांश:—विषय-वासना का सर्वथा त्याग करना और भगवत्-चिन्तन में सदा लीन रहना ही मनुष्य के लिए श्रेयस्कर है।

अयाच्यमक्रेयमयातयाममपाच्यमक्षय्यमदुर्भरं मे।  
अस्त्येव पाथेयमतिप्रयाणे  
श्रीकृष्णनामामृतभागधेयम् ॥३४॥

अर्थ:—(इस जन्म की) अन्तिम लम्बी यात्रा के लिए मेरे पास श्रीकृष्ण का नाम-अमृत रूप सौभाग्य ही रास्ते का भोजन है (जो) न उधार लाया है, न खरीदा है, न बासी है, न पकाने की आवश्यकता रखता है, न क्षय होने वाला है और न दुःख देने वाला भोज ही है।

सारांश:—भगवत्-नाम स्मरण ही आत्मोन्नति का सरल उपाय है।

यस्य प्रियौश्रुतिधरौ रविलोकगीतौ  
मित्रे द्विजन्मपरिवार शिवावभूताम्।  
तेनाम्बुजाक्षचरणाम्बुजषट्पदेन  
राज्ञा कृता स्तुतिरियं कुलशेखरेण ॥३५॥

इति श्रीकुलशेखर राज्ञा कृता मुकुन्दमाला स्तुतिः सम्पूर्णा॥



अर्थ:—जिस (राजा) के दो प्रिय मित्र श्रुति-परायण थे, ज्ञाता थे, जिनका यश सूर्यलोक तक व्याप्त था और जो ब्राह्मण परिवार में कल्याणरूप ही पैदा हुए थे, उस कमल, नेत्र श्रीकृष्णचन्द्र के चरण-कमलों के भ्रमर बने, राजा कुलशेखर ने यह स्तुति रची।

इस प्रकार इन्दुमतिकृत मुकुन्दमाला स्तुति का  
भाषानुवाद सम्पूर्ण हुआ॥



## मुकुन्दमाला का परिशिष्ट भाग ( क्षेपक श्लोक )

भवजलधिगतानां द्वन्द्ववाताहतानां  
सुतदुहितृकलत्रत्राणभारावृतानाम्।  
विषमविषयतोये मज्जतामप्लवानां  
भवति शरणमेको विष्णुपोतो नराणाम् ॥१५॥-१

अर्थ:—संसार समुद्र में डूबे हुए, शीतोष्णादि द्वन्द्वों के वायु से छिन्न-भिन्न किए हुए, (आसक्ति के कारण) पुत्र, पुत्री और स्त्री की रक्षा के भार से घिरे हुए, कठिन विषयों रूपी जल में डूबे हुए, आश्रय देने वाली किशती (यम, नियम, साधन युक्त सुदृढ़ शरीर) से रहित बने हुए मनुष्यों को केवल विष्णु रूपी जहाज ही शरण देने वाला है।

सारांश:—संकल्प-विकल्प रूप दुःख से पूर्ण इस संसार में केवल भगवान् विष्णु का आश्रय ही (साधक) मनुष्य को कैवल्य सुख प्रदान करने में समर्थ है।

रजसि निपतितानां मोहजालावृतानां  
जननमरणधूलीदुर्गतिं सङ्गतानाम्।  
शरणमशरणानामेक एवातुराणां  
कुशलपथि नियोक्ता चक्रपाणिर्नराणाम् ॥१६॥-२

अर्थ:—रजोगुण रूपी धूल में डूबे हुए मोह रूपी जाल से घेरे



हुए, जन्म-मरण की आंधी की दुर्गति में मिले हुए, (इस प्रकार) असहाय बने हुए दुःखी मनुष्यों को आत्म-उन्नति के कुशल मार्ग में लगाने वाला सुदर्शन-चक्र-धारी नारायण ही केवल एक सहारा है।

सारांशः—संसार के दुःखों का अनुभव करके जिन प्राणियों में वैराग्य उत्पन्न हुआ हो, उनको नारायण ही कल्याण मार्ग पर चलने का अनुग्रह करते हैं।

अपराधसहस्रसङ्कलं,  
पतितं भीमभवाणैवोदरे।  
अगतिं शरणागतं हरे!

कृपया केवलमात्मसात्कुरु ॥१७॥-३

अर्थः—हे हरि! हजारों अपराधों में बंधे हुए, भयंकर संसार रूपी समुद्र के बीच में पड़े हुए, निवृत्ति उपाय से रहित और शरण में आये हुए (मुझ) पर कृपा करके केवल अपने स्वरूप में लीन कीजिये।

सारांशः—संसार के दुःखों से पीड़ित मनुष्य का भी उद्धार भगवान् अपनी अनुग्रह-शक्ति से करने में समर्थ हैं।

यच्चिन्तितं च मनसा वचसा निरुक्तं  
चक्षुःकरश्रवणपादविचेष्टितं च।  
यद्यन्निशासु दिवसेषु कृतं मयैव  
तत्तज्जनार्दन तवार्चनमेव भूयात् ॥१८॥-४

अर्थः—हे जनार्दन (पापी जनों का मर्दन करने वाले) जो कुछ मैंने मन में चिन्तन किया है, जो मैंने वाणी से कहा है, जो मैंने हाथ, कान, आँख और चरण से चेष्टाएं की हैं और जो कर्म मैंने रात और



दिन में किये हैं, वे (सब) मुझे आपकी ही पूजा बन जाए।

सारांशः—भगवत् अनुग्रह चाहने वाले भक्त के आन्तरिक और बाह्य सब कर्म भगवत्-अर्पण ही होते हैं।

मा मे स्त्रीत्वं मा च मे दासभावो

मा मूर्खत्वं मा कुदेशेषु जन्म।

मिथ्यादृष्टिर्मा च मे स्यात्कदाचि-

ज्जातौ जातौ विष्णुभक्तो भवामि ॥१९॥-५

अर्थः—(हे भगवान्!) मुझे स्त्री-भाव (विषयोन्मुख होने के कारण चंचल स्वभाव) न मिले, न मुझे दास भाव मिले, न मैं मूर्ख भाव में रहूँ, न मेरा जन्म बुरे देश में हो (जहाँ साधना में बाधा हो और सज्जनों का अभाव हो) और न मुझे कभी भी अनात्म-दृष्टि (देह-बुद्धि) हो, बल्कि मैं जन्म-जन्मान्तरों में विष्णु का भक्त बना रहूँ।

सारांशः—देह-बुद्धि को बढ़ाने वाली परिस्थितियों की उपेक्षा (तिरस्कार) करके ही भक्त भगवान् के अनन्य-शरणभाव को प्राप्त होता है।

क्षीरसारमपनीय शङ्कया,

स्वीकृतं यदि पलायनं त्वया।

मानसे मम नितान्ततामसे,

नन्दनन्दन कुतो न लीयसे ॥२२॥-६

अर्थः—हे नन्द गोप को आनन्द देने वाले श्रीकृष्ण भगवान्! यदि आपने मक्खन की चोरी करने की शंका से भाग जाना स्वीकार किया है तो घने अन्धकार से भरे हुए मेरे मन में क्यों नहीं छिप जाते



हो।

सारांशः—अज्ञान अन्धकार से भरे हुए मन वाला पुरुष भी यदि स्वयं-प्रकाश भगवान् का ध्यान करे तो उसे भगवान् का प्रसाद होना सम्भव है।

—इति—